पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
भिंड, ता. ७-४-१९८९
श्री समयसार, गाथा ३१, प्रवचन नंबर P १३

ये समयसार जी परमागम शास्त्र है। इसकी ३१ नम्बर की गाथा है। अनंत-अनंत काल बीते, भूतकाल की बात है। उसकी पास - अज्ञानी की पर्याय में उत्पन्न तो होता है उपयोग, मगर जब उपयोग लक्षण उत्पन्न होता है, तब वो उपयोग का लक्ष, द्रव्यइन्द्रिय पर जाता है। क्योंकि जैसे इन्द्रियज्ञान, भावेन्द्रिय ऐसे द्रव्यइन्द्रिय भी साथ में अनंतकाल से है। शरीर परिणामको प्राप्त यानि शरीर का नौकर्म का एक भाग (पार्ट), उसका नाम द्रव्यइन्द्रिय है। और द्रव्यइन्द्रिय के लक्ष से जो ज्ञान उपयोग होता है, उसका नाम भावेन्द्रिय है। प्रगट तो होता है उपयोग| अंदर में से भावेन्द्रिय नहीं आती है। वैसे अंदर में से राग नहीं आता है। भगवानआत्मा राग की खान नहीं है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञानमयी भगवानआत्मा अतीन्द्रियज्ञान का कंद है, भावेन्द्रिय का कंद नहीं है। तो जो भावेन्द्रिय प्रगट होती है, उसका मूल कारण तो, उपयोग प्रगट होता है। उपयोग का दुरुपयोग करता है तो भावेन्द्रिय बन जाती है। और उपयोग का सदुपयोग करे तो अतीन्द्रियज्ञान हो जाता है।

उपयोग तो सामान्य प्रगट होता है सबको। समय एक है| पहला समय में उपयोग प्रगट होता है और दूसरे समय में भावेन्द्रिय बन जाती है, ऐसा नहीं है। एक समय में जब उपयोग प्रगट होता है, वो ही समय में, उसका लक्ष पर(द्रव्य) पर जाता है, कर्म नौकर्म पर जाता है, तो उपयोग का दुरूपयोग हो गया, तो भावेन्द्रिय हो गई और भावेन्द्रिय से जो पर को जानता है, तो उसमें अपनापन कर लेता है वो भावेन्द्रिय का धर्म है। धर्म यानि आदत। धर्म यानि आदत। उसको आदत ही है कि जिसको जाने उसको अपना मानता ही है, माने बिना रहता नहीं है।

तो जब कोई ज्ञानी उनको मिलता है, समर्थ आचार्य ऐसी ३१ वीं गाथा सामने आवे, उसको कहे कि तू भावेन्द्रिय को जीत ले| भावेन्द्रिय को जीतने से मोह का क्षय हो जाता है, मिथ्यात्व का नाश हो जाता है, संसार का अभाव हो जाता है। एक समय में संसार, पूर्व पर्याय में संसार था, इन्द्रियज्ञान, और इन्द्रियज्ञान क्रोधादि को जानते समय क्रोध मेरा, ऐसा मानता था, पूर्व पर्याय तक| मगर जब इन्दियज्ञान को जीतने की कला, कोई जीव को तो नैसर्गिक अपने आप होती है और किसी को किसी के बोध से प्रगट होता है| अधिगमज और नैसर्गिक दो प्रकार का सम्यग्दर्शन होता है।

तो जब अपने आप नहीं ख्याल में आवे और कोई ज्ञानी वो विधि वतावे इन्द्रियज्ञान पर विजय करने का, तो फरमाते हैं, इधर आचार्य भगवान कि जो भावेन्द्रिय प्रगट हो रही है, वो दोष है गुण नहीं है| वो ही संसार का बीज है| दोष है वो। शास्त्रज्ञान प्रगट होता है, वो गुण नहीं है, दोष है| जो इन्द्रियज्ञान दोष है, तो क्या शुभभाव गुण हो सकता है? वो तो प्रगट रूप कषाय है| वो तो प्रगट रूप कषाय है। कषाय है वो धर्म है कि अधर्म? बस वहाँ झगड़ा होता है कि कषाय कहो, तहाँ तक तो वाँधा (परेशानी)

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

नहीं। मगर न्याय की बात है ना। कषाय है, तो कषाय है, तो वो धर्म है कि अधर्म। वीतरागभाव तो नहीं है। समझे? वीतरागभाव है? नहीं है। तो वीतरागभाव धर्म है, तो राग अधर्म है। आपो आप (अपने आप) आ गया। और वो अधर्म में से मोक्षमार्ग प्रगट होता है? नहीं होता। आहाहा! तो कषाय का दर्शन करना बन्द कर दे। करना तो बन्द कर दे, तेरे स्वभाव में है ही नहीं। अभी कषाय का दर्शन करने का बन्द करने की वीधि, उसका नाम जितेंद्रीय जिन कहा जाता है।

क्रोध कषाय आया, भजन मे बताया था, क्रोध भी उत्पन्न होता है और उपयोग भी प्रगट होता है। साथ में दो प्रगट होता है, ऐसा मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी कहा। समयसार की २९४ वीं गाथा में भी वो बात, आचार्य भगवान ने कही है। चैत्य चेतक भाव एक समय में प्रगट होता है। चैत्य यानि क्रोध, चैत्य यानि ज्ञेय, और चेतक यानि ज्ञान। चैत्य चेतक भाव एक समय में प्रगट होता है, मगर एकरूप होता नहीं है। उपयोग भी प्रगट होता है और क्रोध भी प्रगट होता है। राग प्रगट होता है। उस ही समय जो भेदज्ञान करे वो आत्मा, कि राग जानने में आया, राग जानने में आ रहा है, तो उसका नाम अज्ञान है। राग की कर्ताबुद्धि वो तो प्योर अज्ञान है। उसमें तो कोई प्रश्न ही नहीं रहता है। मगर राग जानने में आया, आहाहा! वो भी अज्ञान है। क्योंकि राग को जानने के समय ज्ञान जानने में आ रहा था। मगर ज्ञान जानने में आया वो भूल जाता है, और राग जानने में आया, आहाहा! बहिर्मुखता हो गई। अभी ऐसी स्थिति अनंत काल से चली आ रही है।

अभी वो इन्द्रियज्ञान का जीतना, जब जीतेगा आत्मा, तब एक अतीन्द्रियज्ञान नया प्रगट होता हे। वो कैसे जीता जाए? कि जब राग जानने में आता है, तो धर्मात्मा फरमाते हैं कि ज्ञान में ज्ञानत्व भी है और ज्ञान में ज्ञेयत्व भी है। ज्ञान में ज्ञानत्व भी है और ज्ञेयत्व भी है। और राग में अकेला ज्ञेयत्व है, और ज्ञानत्व नहीं है। वो तो सीधी बात है। वहाँ तक तो हाँ आती हे कि नहीं। बराबर अच्छा! अभी जो ज्ञान में ज्ञानत्व है और ज्ञेयत्व है, तो ज्ञान में जो ज्ञेय है ज्ञान, अपने आप, वो तेरे को जानने में नहीं आता है? थोड़ा विचार कर। मेरी बात का जरा प्रयोग कर। जो फायदा हो, ये जांगड़ (परत देनेकी शर्तवाला) माल है मेरा। जांगड़ माल कपड़े की दुकान वाला जांगड़ देते हैं। कि पाँच साड़ी ले जाओ, जो पसंद हो तो रख लेना नहीं तो वापस दे देना। ऐसा हीरा का व्यापार में भी मैंने देखा, जांगड़ पेकेट देते हैं। ये हीरा का व्यापारी दो बैठे हैं, तुम्हारी पास, एक मधुभाई, शांतिभाई। अहाहा ! तो ये आचार्य भगवान को खात्री है, आचार्य भगवान को तो खात्री है कि मेरा माल तो वापस आने वाला नहीं है। आहाहा! तो सच्चा ग्राहक तो माल खरीद लेता है।

ज्ञानी ने कहा कि तेरे ज्ञान में ज्ञानत्व है और ज्ञेयत्व है, तो ज्ञान में जरा ठहर, कि राग जानने में आता है जरा उसका लक्ष गौण कर, लक्ष छोड़ दे, वहाँ से लक्ष छोड़ दे। राग नहीं छोड़ना। क्योंकि राग का कर्ता भी नहीं है, तो उसको त्यागता भी नहीं है। आहाहा! कर्ता हो, तो तो राग का त्याग हो। तो कर्ता तो है ही नहीं। परिणाम का कर्ता तो परिणाम है। भले हो राग, मगर राग पर से तेरी दृष्टि हटा दे। राग जानने में आता हैं, दुःख जानने में आता है। सिर का दुखाव हुआ, पेट में दुखाव हुआ, आहाहा! दुःख जानने में आता है वो दुखी हो जाता है। तेरे को दुख जानने में नहीं आता है, सचमुच तो ज्ञान जानने में आता है। क्योंकि ज्ञान में ज्ञानत्व भी है और ज्ञेयत्व भी है। तो ज्ञेयत्व होने से, ज्ञान प्रति समय जानने में आ

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

रहा है। जो इसमें ज्ञेयत्व न हो, तो तो ज्ञान जानने में न आवे, तो तो ठीक है। मगर दो धर्म युगपत एक समय में है। एक समय में दो धर्म हैं।

तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि पहले इन्द्रियज्ञान से, मानसिकज्ञान से निर्णय तो कर कि, ज्ञान जानने में आ रहा है या राग जानने में आ रहा है? जरा ठहर, ठहर कर विचार कर, प्रयोग कर। तो उसने प्रयोग किया शिष्य ने कि आ मेरे को सचमुच तो ज्ञान जानने में आ रहा है। जरा टिका ज्ञान पर, वहाँ से लक्ष हट गया, इन्द्रियज्ञान का व्यय हो कर अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है। उनका नाम इन्द्रियज्ञान का जीतना है। पर्यायार्थिक चक्षु बंद हो गई। क्या कहा? शास्त्रीय भाषा। शास्त्रीय भाषा क्या है? कि जो राग को जानता था, वो उसने बंद कर दिया। यानि जब ज्ञान जानने में आता है, तब राग जानने में नहीं आता। तो तर्क करता है, कुतर्क। अज्ञानी बहुत कुतर्क करे कि भाई साहब! भले ज्ञान जानने में आवे, कोई तकलीफ नहीं। पर राग को जानने का बंद करने का क्यों कहते हो? क्योंकि स्व-परप्रकाशक है, समझ में आया? कुतर्क! कि ज्ञान को भी जानूँ और राग को भी जानूँ, तो इसमें इन्द्रियज्ञान जीता जाएगा और अतींद्रियज्ञान प्रगट (हो जाएगा)। कभी नहीं होगा।

एक उपादेय है और एक हेय है। दो पर द्रष्टि जाएगी तो अनुभव नहीं होगा। तो सर्वथा बंद कर दे जानने का। तो जानने का सर्वथा बंद करेगा तो अकेला स्व प्रकाशक ज्ञान होगा। शास्त्रीय भाषा ऐसी है कि पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद किया तो अकेला उघड़ेला(खुले हुए) उघाड़ेला(खुले हुए) द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा, अकेला ज्ञायक तत्त्व जानने में आता है। उस टाइम राग जानने में आता नहीं। क्योंकि आत्मा में राग नहीं है। जो आत्मा में है, वो जानने में आता है। जो आत्मा में राग नहीं है, तो जानने में आता नहीं है। न्याय समझे?

जानना बंद हुआ इसका कारण क्या? कि ज्ञायक में राग नहीं है। इसलिये राग जानने में आया नहीं। ऐसे स्वप्रकाशक ज्ञान के अंदर अनुभूति होती है। बाद में, बाहर निकलता है, राग भी उत्पन्न होता है। यथाख्यात चारित्र नहीं है, कमजोरी भी है, और पर्याय की योग्यता भी थोड़ी, थोड़े काल तक रहती है। तो ज्ञान राग को जानता है, तो जाना हुआ प्रयोजनवान अकेला राग को ज्ञान नहीं जानता। पहले तो अकेला राग को जानता था। अनुभव के बाद अकेला राग को ज्ञान जानता नहीं है। उस ही समय राग जब जानने में आता है उस ही समय ज्ञायक जानने में आ रहा है। वो स्वपरप्रकाशक ज्ञान, स्वपर प्रकाशक ज्ञान जानने में आता है। राग जानने में नहीं आता है। कहा जाता है कि राग को जाना।

फिर से, कि अनुभव में तो अकेला स्वप्रकाशक ज्ञान है। स्वप्रकाशक लक्षण से आत्मा लक्षित होता है, ऐसी नियमसार शास्त्र की शुद्धोपयोग अधिकार की १६५ गाथा है, घर जाकर देख लेना। और श्रुतज्ञान के द्वारा केवल शुद्धात्मा को जानता है, उसका नाम निश्चय से श्रुतकेवली है। और शुद्धनय के द्वारा ही शुद्धात्मा का अनुभव होता है। सब जगह ये स्वप्रकाशक निकलता है। स्वप्रकाशकपूर्वक स्वपरप्रकाशक होता है। स्वप्रकाशक का जन्म नहीं होता है, तो सम्यक प्रकार से स्वपरप्रकाशक प्रमाण उत्पन्न होता नहीं है।

तो जब राग जाना हुआ प्रयोजनवान लिखा, तो वहाँ भी वो ज्ञान में आत्मा तो जानने में आ रहा है, और प्लस, प्लस राग भी जानने में आता है। मगर ये राग को जानता है, ऐसा नहीं है। राग संबंधी और

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

आत्मा संबंधी ऐसी ज्ञान की पर्याय स्वपरप्रकाशक प्रगट होती है। वो ज्ञान की पर्याय को ज्ञान जानता है। तो कहा जाता है कि राग को भी जाना, सचमुच तो ज्ञान को जानता है। आहाहा! विषय बदल गया। आहाहा!

पहले राग को जानता था फिर भी राग को जाने ऐसा नहीं है, मगर उपचार से कहा जाता है निमित्त देखकर। निमित्त देखकर ऐसा कहा जाता है कि राग को जानता है। सचमुच तो उस ज्ञान की पर्याय में द्विरूपता होती है। स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य, वो ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य जानने में आता है। आहाहा! ऐसे सविकल्प दशा में जाना हुआ प्रयोजनवान है। तो पहले तो, जब ये ज्ञान राग को जानना बंद करता है, तो ज्ञान अंतर्मुख होकर ज्ञायक को जान लेता है, उसका नाम जितेन्द्रीय जिन कहा जाता है। वो बात फाजल में चली थी फिर से अभी भी दोहराई।

अभी भावेन्द्रिय का जीतना इसमें आया, ऐसा उनपचास (४९) वीं गाथा में भावेन्द्रिय का जीतना आता है। इकत्तीस (३१) गाथा है ना, ये उनचासवी (४९) गाथा है। उनचासवी (४९) गाथा में भावेन्द्रिय की बात है। **अपने स्वभाव की दृष्टि से देखा जाय तो**, त्रिकाल सामान्य चिदानंद आत्मा की द्रष्टि से देखा जाए तो, पर्याय की दृष्टि बंद करके द्रव्य स्वभाव की ओर झुककर देखा जाये तो, आहाहा ! **उसके** यानि आत्मा के **क्षयोपशमिक भाव का भी अभाव होने से**, आहाहा! क्षयोपशम भाव आत्मा में नहीं है। त्रिकाली द्रव्य में क्षयोपशम भाव नहीं है। **होने से**, प्रश्न ही ऐसा है। परमार्थ जीव का स्वरूप पूछा है और उसका लक्षण क्या है? **होने से वह भावेन्द्रिय के आलंबन से भी रस नहीं चखता, इसलिए अरस है। ४।** द्रव्येन्द्रिय के आलंबन से तो रस का ज्ञान होता नहीं है। रस का ज्ञान नहीं होता है। मगर जहाँ जीभ है, द्रव्येन्द्रिय वहाँ उसका उघाड़ भी एक है, भावेन्द्रिय। भावेन्द्रिय - क्षयोपशम ज्ञान। वो क्षयोपशम ज्ञान का ही अभाव है इसलिए आत्मा, भावेन्द्रिय के द्वारा रस को जानता नहीं है। रस को जानने का साधन द्रव्यइन्द्रिय तो है ही नहीं, मगर भावेन्द्रिय भी नहीं है। वह अतीन्द्रियज्ञान से आत्मा को जानते-जानते रस को जान लेता है। आहाहा! बिन अनुभवी को जरा कठिन तो लगे समझे? मगर वस्तुस्थिति तो ऐसी ही है। आहाहा!

भावेन्द्रियके आलम्बनसे भी रस नहीं चखता इसलिये अरस है। समस्त विषयोंके विशेषो में साधारण ऐसे एक ही संवेदनपरिणामरूप उसका स्वभाव होनेसे वह केवल एक रसवेदनापरिणामको पाकर रस नहीं चखता इसलिए अरस है। एक-एक इन्द्रिय को जाने रस को और दूसरे बीजा भाव को नही जाने ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। युगपत एक समय में जब अतीन्द्रियज्ञान से आत्मा को जाना तो ऐसा श्रुतज्ञान का एक स्वभाव है अतीन्द्रिय श्रुतज्ञान का, आहाहा! भावश्रुतज्ञान का ऐसा स्वभाव है (कि) जिसने आत्मा को जाना, उसने सब कुछ जान लिया। पाँच इन्द्रिय का विषय का भी एक को ज्ञान, ऐसा श्रीमद राजचंद्र जी ने कहा है, पाँच इन्द्रिय का विषय का भी, एक को ज्ञान हो जाता है।

इन्द्रियज्ञान कमजोर है, अतीन्द्रियज्ञान बलवान है। वो तो केवलज्ञान का अंश, अवयव है। आहाहा! ये श्रुतज्ञान में भूत, भविष्य, वर्तमान तीन काल, तीन लोक का पदार्थ उसमें प्रतिभासित होते हैं। इतनी (श्रुतज्ञान की) ताकत है। भले उपयोगात्मक न हो, प्रत्यक्ष परोक्ष का तफ़ावत है भले। मगर सब ज्ञेय वह

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञान में प्रतिभास हो गया भूत, भविष्य, वर्तमान। चमत्कारिक बात है, भावश्रुतज्ञान की बात चमत्कारिक है। आहाहा! सहन न हो सके ऐसी बात है, सहन समझे? पचा नहीं सके, (ऐसी बात है)। आहाहा! हैं अच्छा! पड़कार आया कि पचेगा खुला दिल से कह दो आज तो| आहाहा! इधरका पानी पाचक है| भाईसाहब बोलते हैं कि, आहाहा! इधर का पानी पाचक है| तो श्रुतज्ञान की ताकत इतनी है कि तीन काल तीन लोक भूत, भविष्य, वर्तमान का पदार्थ का यै श्रुतज्ञान में प्रतिभास हो रहा है।

उसमें एक सेतालीस (४७) नय है प्रवचनसार की, उसमें चौदहवें नम्बरकी द्रव्य नय है| चौदहवीं एक द्रव्य नय है। तो नय का विषय निक्षेप होता है, श्रुतज्ञान है न| तो उसका विषय, ज्ञेय का एक भाग, उसको निक्षेप कहा जाता है। तो वो श्रुतज्ञान में भूत की पर्याय, अपनी और पर की, भविष्य की पर्याय अपनी और पर की, कभी-कभी प्रत्यक्षवत दिखाई देती है। ज्ञानी गंभीर है कहे नहीं किसी को| ख्याल में आ जाए, ओहो! ये तो अल्पकाल में सिद्ध होने वाला है| आहाहा! ये तो चक्रवर्ती होने वाला है| ये जीव तो तीर्थंकर होने वाला है। ऐसा श्रुतज्ञान में दूसरे जीव का भी ख्याल आ जाता है| आहाहा! ऐसा सब व्याख्यान भी छप गया है। गुरुदेव के व्याख्यान में है, सब बात। गुरुदेव पर श्रद्धा रखना चाहिए, ज्ञानी पर (श्रद्धा रखना चाहिए) आहाहा!

ऐसी श्रुतज्ञान की ताकत, एक समय के ज्ञान की ताकत और ज्ञान गुण की ताकत और गुणी परमात्मा की ताकत, इसकी तो बात क्या कहें? ओहोहो! एक श्रुतज्ञान का महिमा आवे न तो (पूरी) आत्मा की महिमा आ जावे, कितनी शक्ति का पिंड है सामर्थवान आत्मा|

तो एक समय में लिखता है आचार्य भगवान, सर्व विषयोके विशेषों में साधारण एक ज्ञान की अतींद्रियज्ञान की पर्याय में सब जणित (जानने में आ) जाता है। संवेदन परिणामरूप उसका स्वभाव होने से वह केवल एक रस को चखते, जानते नहीं हैं, सब को जान लेते हैं। **पाकर रस को नहीं चखता, इसलिए अरस है।**

उसे समस्त ज्ञेयों का ज्ञान होता है, समस्त ज्ञेयों लिखा। क्या लिखा? अनुभवी को समस्त ज्ञेयों का ज्ञान हो जाता है। उपयोगात्मक प्रतिभास वो अभी नहीं लेना। उपयोगात्मक नहीं है, उपयोगात्मक तो केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष है। और उसको उपयोगात्मक कभी-कभी हो जाता है, तो ख्याल आ जाता है। ऐसे श्रीमद राजचंद्रजी ने बन्दर बैठा था, बन्दर, बांदरा, क्या कहते हैं? बंदर, कहा उतावल (जल्दी) मत कर मोक्ष जाने के लिए| यानि मोक्षगामी तो तू है। बन्दर को आहाहा! श्रुतज्ञान कोई अचिन्त्य श्रुतज्ञान की आत्मज्ञानकी ताकत है| तो इसमें लिखा है **उसे समस्त ज्ञेयोंका ज्ञान होता है**, समस्त स्वपर दोनों दोई।

सकल ज्ञेयज्ञायकके तादात्म्यका (-एकरूप होनेका) निषेध होनेसे रसके ज्ञानरुप परिणमित होने पर भी स्वयं रसरूप परिणमित नहीं होता इसलिए अरस है। रस का ज्ञान हुआ, मगर ज्ञान रस रूप होता नहीं है, अरस है। रस का ज्ञान हुआ तो ज्ञान खट्टा हो गया, ऐसा है नहीं। रस का ज्ञान उसकी स्वच्छता है, वो ज्ञेय है, इधर ज्ञान है, रस का ज्ञान हुआ, तो भी ज्ञान खट्टा होता नहीं है। यानि अरसरूप रहता है| रसरूप होता नहीं है। रस का ज्ञान होने पर भी रस के साथ, ज्ञान का अनन्य तादात्म्य संबंध नहीं होने से, नहीं होने से, ज्ञान रसरूप होता नहीं है। आहाहा! माल भरा है, मालामाल है इसमें तो| जिसकी जितनी शक्ति, उतना वो समयसार में से निकाल शकता है। उसके ऊपर व्याख्यान निकल चुका

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

है| ग्यारह भाग, ग्यारह भाग (निकल चुका है)। इकत्तीस भी, उनपचास गाथा सब निकल चुका है। अभी ये भावेन्द्रिय का जीतना हो गया।

अब ये तीसरा बोल है। भावेन्द्रिय का जो विषय है, उसको जीतने की बात है। ग्राह्य-ग्राहक, **ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले संबंधकी निकटता** से ग्राह्य और ग्राहक, ज्ञाता और ज्ञेय ज्ञाता जाननेवाला और वो जणित (जानने में आ) जाता है, ज्ञेय। **ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले**, ग्राह्य, ग्राहक लक्षण तो आत्मा का है और ग्राह्य लक्षण ज्ञेय का है। ज्ञेय और ज्ञायक, ज्ञाता और ज्ञेय, इधर ज्ञाता है और वो ज्ञेय है| ऐसे **संबंधकी निकटताके कारण** निकट है। ज्ञाता और ज्ञेय निकटवर्ती है, एक पदार्थ नहीं है। आहाहा! निकट का ही अर्थ दो भिन्न भिन्न है, निकट का अर्थ क्या? निकट शब्द का द्योतक है भिन्न-भिन्न| **निकटताके कारण जो अपने संवेदन (अनुभव) के साथ परस्पर एक जैसी हुई दिखाई देती है**, दिखाई देती है| ज्ञेय और ज्ञान एक होता नहीं, एक निकट है न। निकट है तो एक जैसा दिखाई देता है। आहाहा|

जैसे क्रोध और ज्ञान, ज्ञान तो ज्ञायक है और क्रोध ज्ञेय है अति निकट दिखाई देता है| तो भी **ऐसी भावेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये हुवे**, जो इन्द्रियज्ञान में जो पदार्थ ज्ञेय जानने में आया, अति निकट है, एक जैसे लगता है तो **किये हुवे जो इन्द्रियोंके विषयभूत स्पर्शादि पदार्थोंको**, इन्द्रिय का जो विषय है स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, पाँच इन्द्रिय का विषय, विषयभूत स्पर्श आदि पदार्थों को अपनी चैतन्य की शक्ति को स्वयं में अनुभव में आनेवाली, आहाहा! ज्ञेय और ज्ञाता और ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय, जो निकटवर्ती है, उसका संबंध तोड़ता है, आत्मा।

क्या कहा? ये ज्ञाता और क्रोधादि ज्ञेय, देहादि ज्ञेय, ऐसा निकटवर्ती संबंध होने पर भी, चैतन्य शक्ति की स्वयमेव ही अनुभव में आने वाली असंगता के द्वारा, असंग है आत्मा। आत्मा असंगी होने से वो क्रोध का संग उसमें आता नहीं है। आहाहा! आत्मा असंगी है, इन्द्रियज्ञान संग वाला है| क्या कहा? इन्द्रियज्ञान तो संग वाला है| मगर भगवानआत्मा है, वो तो असंगी है परमात्मा, ऐसी चैतन्य शक्ति की स्वयमेव, आहाहा! स्वयमेव शब्द बहुत आता है। अपने आप| स्वयमेव अर्थात अपने आप! आहाहा! अनुभव में आने वाली, यानि जानने में आने वाली असंगता के द्वारा सर्वथा अपने से अलग किया। आहाहा!

जो ज्ञाता ज्ञेय का संबंध से ज्ञेय ज्ञायक का संकर दोष आता था। ज्ञेय और ज्ञायक भिन्न-भिन्न होने पर भी भेदज्ञान का अभाव होने से, ज्ञेय और ज्ञायक एकमेक लगता था- संकरदोष, एकत्व, खिचड़ी। आहाहा! दो पदार्थ साथ में मिलते हैं, तो खिचड़ी नाम आता है ना। मूंग की दाल का नाम भी गया और चावल का नाम भी गया। ज्ञेय भी गया और ज्ञायक भी गया और मिथ्यादृष्टि हो गया, खिचडी़ हो गई। आहाहा! खिचड़ी में भी स्वाद तो जुदा-जुदा है। मगर खिचड़ी की गृद्धिवाला है ना, उसको चावल का स्वाद जुदा, और मूंग की दाल का स्वाद जुदा, उसका भेद ख्याल में आता नहीं है। आहाहा!

ऐसे (असंगताके) द्वारा सर्वथा अपने से अलग किया। सर्वथा यहाँ तीनो बार सर्वथा आया, द्रव्यइन्द्रिय भी सर्वथा जुदा, भावेन्द्रिय भी सर्वथा जुदा जाना, इन्द्रियज्ञान का जो विषय, वो भी सर्वथा जुदा जाना! वो जुदा कब जानने में आता है? कि जब चैतन्य शक्ति की ओर दृष्टि जाती है, मैं तो असंगी हूँ। आहाहा! ज्ञेय के साथ मेरा कोई संबंध नहीं है। असंगी परमात्मा हूँ| तो विषयभूत पदार्थों को जीतना हुआ।

इस प्रकार जो मुनि, मुनि की मुख्यतासे कोष्ठक उसमें किया है, बाकि तो मिथ्यादृष्टि के लिए है।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

मुनि शब्द आया ना तो कोष्ठक किया| द्रव्यइन्द्रिय क्यूंकी मुनि को इन्द्रिय जीत तो चौथा गुणस्थान में होती है। मुनि के लिए तो ये भावक भाव का जीतना और भावक भाव का क्षय होना, वो बत्तीस और तेतीस गाथा अलग है। इधर तो मिथ्याद्रष्टि को इन्द्रियज्ञान जीतने से मोह का नाश होता है, वो बात है। तो द्रव्यइन्द्रिय और भावइन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों को, तीनों को जीतकर, यानि उसका लक्ष छोड़कर जितना इसका अर्थ क्या? कि अपनापन मानता था और अपनापन आया अतीन्द्रियज्ञानमय परमात्मा में, तो इन्द्रियज्ञान में अपनापन छूट गया। इन्द्रियज्ञान का विषय में भी अपनापन छूट जाता है। इन्द्रियज्ञान रह गया, द्रव्यइन्द्रिय रह गई, उसका विषय भी भले रहा, मगर मैं-पना की बुद्धि छूट गई, ममत्व छूट जाता है। जीतना क्या? जीतकर ज्ञेय ज्ञायक संकर नाम का दोष आता था।

ज्ञेय और ज्ञायक| ज्ञायक तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा और ज्ञेय का तीन विभाग, द्रव्यइन्द्रिय ज्ञेय, भावेन्द्रिय ज्ञेय, और भावेन्द्रिय का विषय ज्ञेय, तीनों ज्ञेय| और एक ज्ञायक, उसको एकत्व ज्ञेय ज्ञायक का संकर दोष आता था, एकत्व बुद्धि, एकपणा की मान्यता आती थी, उसको जीतकर ज्ञेय ज्ञायक संकर नाम का दोष आता था, सो सब दूर होने से, आहाहा! एकत्व बुद्धि छूट जाती है। आहाहा! ज्ञायक रह जाता है, ज्ञायक का ज्ञान भी रह जाता है, इन्द्रियज्ञान भी रह जातां है, द्रव्यइन्द्रिय भी रहती है, थोड़े टाइम तक। आहाहा! वो तो अपने अपने स्वरूप में है, हमेरे स्वरूप में आता नहीं है।

वो तो सब दूर होने से एकत्व के, एकत्व में टंकोत्कीर्ण, मैं तो एक परमात्मा हूँ। टंकोत्कीर्ण यानि अनादि अनंत जैसा हूँ, वैसा और वैसा मैं रहा उसमें कोई वध-घट (बढ़ना और कम होना) होती नहीं है। निगोद में कोई शुद्धि घटती नहीं है, द्रव्यस्वभाव की शुद्धता घटती नहीं है और मोक्ष हो तो बढ़ती भी नहीं है। आहाहा! बढ़ना-घटना वो मेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा! वो तो पर्याय का स्वभाव है और पर्याय मेरा स्वरूप नहीं है।

एक टंकोत्कीर्ण और ज्ञान स्वभाव के द्वारा, ज्ञान स्वभाव के द्वारा, सर्व अन्य द्रव्यों से, सर्व अन्य द्रव्यों से, परमार्थ से भिन्न, खरेखर भिन्न ऐसे अपनी आत्मा का अनुभव करते हैं। आहाहा! अधिक जाने आत्मा ने, आया था न! अधिक यानि जुदा, सब परपदार्थ भावकर्म, द्रव्यकर्म, नौकर्म से जुदा। भावकर्म में भावेन्द्रिय ले लेना, भावकर्म में भावेन्द्रिय ले लेना। कर्मधारा है, ज्ञानधारा नहीं है। आहाहा! आत्मा का अनुभव करते हैं, वे निश्चय से जितेंद्रीय जिन हैं। चतुर्थ गुणस्थान में हिरण, देड़का, गाय, भैंस, तिर्यंच जितेंद्रीय जिन हो गया, लघुनंदन हो गया परमात्मा का। आहाहा!

लोगों को सम्यग्दर्शन की किंमत नहीं है। चारित्र का स्वरूप जानता नहीं है। सम्यग्दर्शन की कीमत नहीं है और यथार्थ चारित्र का स्वरूप क्या है वो जानता नहीं है, कषाय की मंदता को चारित्र मानता है। कषाय की मंदता तो धर्म है कि अधर्म? अरे! अधर्म मत कहो, व्यवहार धर्म कहो। क्या कहा? व्यवहार धर्म कहो तो ठीक लगे हमको, समझे? व्यवहार धर्म का स्वरूप अनुभव के बाद होता है। व्यवहार धर्म नाम पाता है अनुभव के बाद, पहले तो अधर्म ही है। आहाहा! धर्म का वीतरागभाव उसमें नहीं है| शुभभाव क्या वीतराग भाव है? जो बंध का कारण है, वो मोक्ष का कारण होता नहीं है। आस्त्रव तत्व है, संवर तत्व नहीं है। आहाहा! शुभराग है ना, वो तो भैया आश्रव तत्व है। उसमें तो तो दुःख ही दुःख है, उसमें कोई आनंद आता नहीं है। आहाहा! जो शुभभाव है ना, वो वीतराग भाव होता नहीं है, उसमें

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

आनंद आता नहीं है।

देखो! अब एक दृष्टांत दूँ| भगवान की पूजा में बैठे, भगवान की पूजा में बैठता है। आधा घंटा हुआ, घंटा हुआ, कोई दो घंटा बैठे, बाद में कंटाला आता है। कंटाला क्यूँ आता है? धर्म में कंटाला आता नहीं है। आहाहा! अधर्म भाव में दुख ही है इसलिये कंटाला आता है, छोड़ देता है, दुकान में चला जाता है। दुकान में कंटाला आता है तो T.V. में चला जाता है। पराश्रित भाव में एकान्त दुख है भैया और स्वाश्रित संवर, निर्जरा में सुख ही सुख है। आहाहा! समझ में आया कुछ? आहाहा! ठीक है! तू धर्म मानता है|

एक दफे ऐसा हुआ कि एक भाई ने कहा कि मेरे को तो लाडू खाने में सुख है, समझे? तो अच्छा! मेरे घर जीमने आना लाडू खाने में सुख है ना| ऐसा तो बोले की लाडू खाने में सुख नहीं है, तो माने ही नहीं, तो तो माने ही नहीं| घर जीमने को बुलाया। लाडू परोसा, एक लाडू, दो लाडू, तीन लाडू आँ...नहीं नहीं। क्यों लाडू खाने में सुख है तो खाया कर ना! तेरे लिए सौ लाडू बनाया है, तेरे लिए सौ लाडू बनाया है। बस, दो लाडू में थक गया तू?

बाद में लड़के ने कहा कि मेरे को सिनेमा देखने में बहुत सुख लगता है| अच्छा! तो पिताजी ने कहा अच्छा तो एक साथ तीन शो का टिकिट ले ले। तीन-तीन नौ घंटे का| समझ गए? टिकिट बस मँगवाया, लड़का गया। तीन घंटे के बाद वापस आया कि पिताजी मेरे को तो कंटाला आ गया। जो देखने में, सिनेमा देखने में, पिक्चर देखने में सुख हो, तो सुख कोई छोड़ता नहीं है और दुख सहन होता नहीं है, इसलिए वापस आता है| आहाहा!

ज्ञेय के सन्मुख से कभी तीन काल में सुख होता नहीं है। निमित्त का लक्ष से सुख होता नहीं है। शुध्द आत्मा के उपादान के लक्ष से सुख होता है और कंटाला आता नहीं है। सिध्द भगवान क्यों नीचे नहीं आते हैं? आहाहा! कि स्वाभाविक भाव में कभी दुख होता नहीं है। आहाहा! मुनिराज जंगल में साधना करते हैं, बहुत प्रतिकूलता हो तो भी सुखी हैं, तो भी सुखी हैं| क्योंकि आत्मा आश्रित आनंद का भोजन करते हैं| इतना आनंद की मस्ती हो जाती है कि एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन चले जाए, आहार की इच्छा भी नहीं होती है, आहार की (इच्छा नहीं होती) आहाहा! इसका नाम चारित्र है, तप है। इच्छा निरोध तप हैं। परिणाम पर बलात्कार करता है जीव, तो कर्ताबुद्धि डबल हो जाती है। सहज का धंधा है, यह तो। आहाहा! तो कहे तो आप सब बचाव करता है। बचाव की बात नहीं है, वो स्थिति की बात है| तो जितेंद्रीय जिन हुआ।

ज्ञान स्वभाव अन्य अचेतन द्रव्य में नहीं है। अचेतन द्रव्य में तो ज्ञान नहीं है इसलिए उसके द्वारा आत्मा सबसे अधिक भिन्न ही है। कैसा है वह, ज्ञानस्वभाव कैसा है? विश्व के समस्त पदार्थों के ऊपर तैरता हुआ, उन्हें जानता हुआ भी, उन रूप न होता हुआ। ज्ञेय ज्ञान में जानता है, जनाय (जानने में आ) जाता है मगर ज्ञेयरूप होता नहीं है। ज्ञान, ज्ञानरुप रहता है ज्ञेय ज्ञेयरूप होता है| ज्ञान अपने स्थान में है, ज्ञेय अपने स्थाने में है। ज्ञेय, ज्ञान के सन्मुख नहीं होता है, ज्ञेय आत्मा के ज्ञान में आता नहीं है। अपने-अपने स्थान में होने पर, ज्ञान की ताकत तो कोई अपूर्व है।

विश्व के ऊपर तैरता हुआ, प्रत्यक्ष उद्योतपने से सदा अंतरंग में प्रकाशमान, सदा अंतरंग में

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

प्रकाशमान, सदा हो, भगवानआत्मा, अविनश्वर, पर्याय नाशवान है, आत्मा अविनाशी है, स्वतः सिद्ध, आत्मा परत्व सिद्ध नहीं, स्वतः सिद्ध है। कोई कहता है कि अग्नि, वायु (आदि पंच) निकले तो जीव बन जाएगा। ऐसी-ऐसी गप्पा मारता है, स्वतः सिद्ध। सब गप्पा है। गप्पा मारने वाला भी बहुत और हाँ में हाँ मिलाने वाला मूर्ख भी बहुत है। झुकने वाला भी बहुत है, झुकाने वाला भी बहुत है। हाँ में हाँ करता है, ऐसे, शुभभाव से धर्म होता है भैया। आहाहा! हाँ में हाँ मिलाता है। शुभभाव कषाय है? हाँ कषाय तो है। कषाय है तो कषाय से धर्म होता है कि वीतराग भाव से? वो तो पांछा फिरे, पांछा फिरे याने क्या? अपनी श्रद्धा को आहाहा...कि मेरी भूल हो गई थोड़ी। आहाहा!

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com